|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

2/2 (श्लोक 7-20), शनिवार, 24 अगस्त 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/phXkaPMt9o0

जीवात्मा की स्थिति

सनातन वैदिक परम्परा का पालन करते हुए, दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना, प्रारम्भिक प्रार्थना के साथ सत्र का आरम्भ हुआ। केवल गीताजी में ही श्रीभगवान ने यह बात कही है-

आप किस विधि से मेरी साधना करते हैं?

उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

आपके अन्दर कितना परिवर्तन आया?

अन्तर उस बात से पड़ता है।'

भक्ति के कितने गुण आप में आए? मैत्री, करुणा, दया, मार्ग से अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि लक्ष्य और गन्तव्य तक पहुँचना महत्त्वपूर्ण होता है। एकमात्र श्रीमद्भगवद्गीता है जिससे सभी सम्प्रदाय सहमत हैं। श्रीभगवान ने अपने धाम का पता इस अध्याय में बताया है।

15.7

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है; (परन्तु वह) प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

विवेचन:- यह श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता का सबसे महत्त्वपूर्ण श्लोक है। हम अपने धर्म को सनातन धर्म कहते हैं। श्रीभगवान कहते हैं - इस देह में जो सनातन जीवात्मा है, वह मेरा अंश है।

दो शब्द होते हैं- पुरातन तथा सनातन।

पुरातन- अर्थात् बहुत पुराना, लाखों साल पुराना। पुराण सबसे पुराने हैं। सनातन- जिसका आदि और अन्त नहीं है। मैं जितना पुराना हूँ, उतने ही पुराने तुम हो।

समष्टि का अर्थ है-
जब हम व्यापकता की बात करते हैं।

व्यष्टि-
जब हम बात को सङ्कुचित करते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन तुम मेरा ही अंश हो। न मेरा आदि है न अन्त है। जीवात्मा की चार स्थितियाँ हैं।

पहली है **परमात्मा-** हम अपने दु:खों से परेशान हैं। सन्तों को सभी के दु:खों की चिन्ता होती है इसलिए सन्त की दृष्टि समष्टि और हमारी दृष्टि व्यष्टि है। परमात्मा समष्टि हैं। **आत्मा**- जब तक उसमें कर्म का भाव नहीं जुड़ा। आत्मा से हमारे पाप-पुण्य, कर्म-बन्धन जुड़ गए, तो वह **जीवात्मा** हो जाती है। शुभ-अशुभ कर्मों को भोगने के लिए शरीर धारण करना पड़ेगा। जीवात्मा किसी देह में प्रविष्ट हो जाती है तो वह **देहधारी** हो जाती है।

"जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ

ज्यों जल में कमल का फूल रहे"

इस संसार में जो वासनाओं का स्पर्श नहीं करता, वह आत्म-तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

एक सुन्दर भजन है-

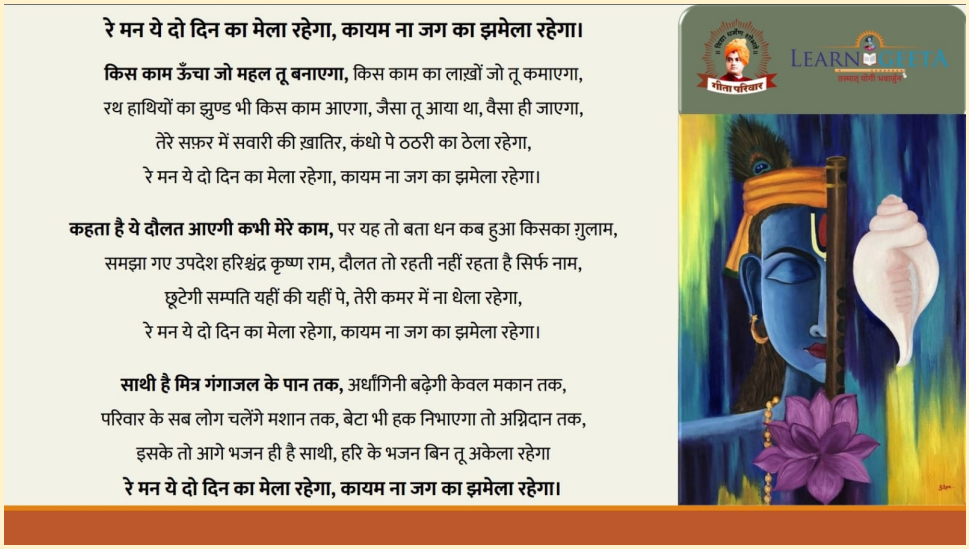

शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

विवेचन:-यह जीवात्मा कैसे एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है? श्रीभगवान ने यहाँ बड़ा ही सुन्दर उदाहरण वायु का दिया है। वायु सर्व व्यापक है, पर दिखाई नहीं देती। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ वायु न हो। उसके आने-जाने का अनुभव हमें होता है।श्रीभगवान कहते हैं कि जैसे वायु सर्वत्र है, वैसे ही जीवात्मा भी सर्वत्र है। मन के आकर्षण के अनुसार अन्त समय में मनुष्य का जो विचार होगा, अगला जन्म उसी के अनुसार होगा।

अन्तकाल स्मरण मुक्तवा कलेवरम्

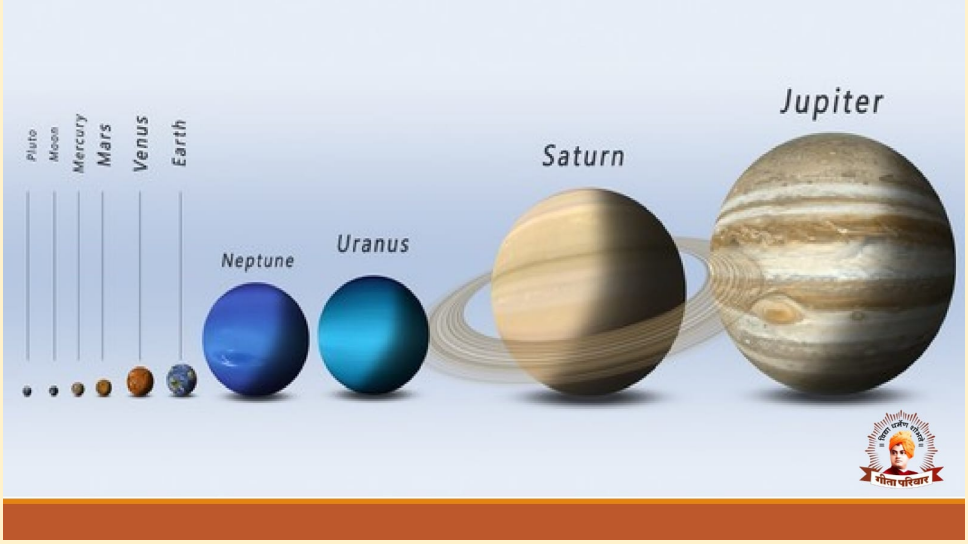

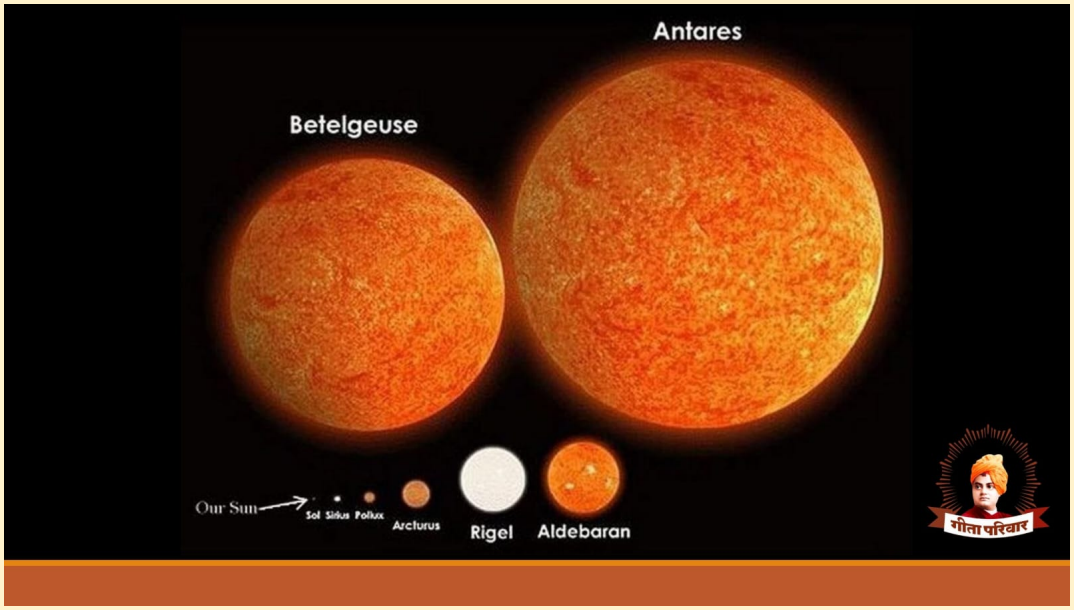

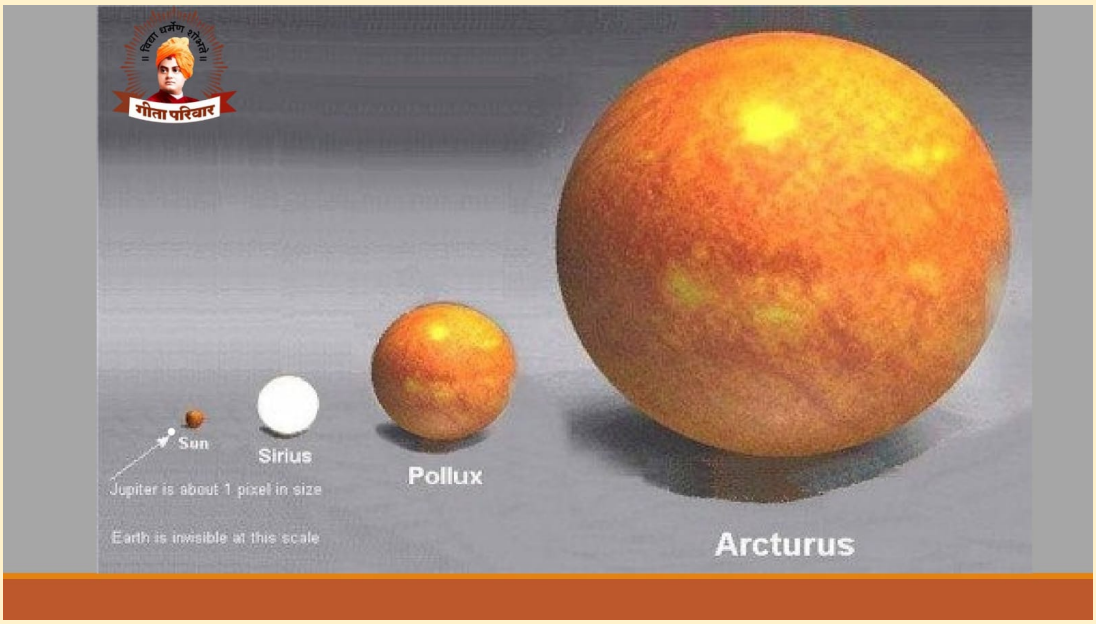

सौर मण्डल में सूर्य सबसे बड़ा है। सूर्य के सामने हमारी पृथ्वी बिन्दी जैसी दिखती है। आखिर सबसे बड़ा है क्या?

जब नये तारों को वैज्ञानिकों ने खोजा है, तो रीगल नामक तारा आर्केटस से भी कई गुना बड़ा है। इसी प्रकर जब एण्टारस के सामने देखते हैं तो हमारा सूर्य दिखता भी नहीं है। जिस सूर्य के सामने हमारी पृथ्वी बिन्दी जैसी दिखती है, वह सूर्य एण्टारस के सामने बिन्दी जैसा दिखता है।

वैज्ञानिकों ने नए तारे को खोजा है, उसके सामने तो हमारा सूर्य दिखता भी नहीं है। नासा ने कहा है, इससे भी बड़े-बड़े तारे हैं। वहाँ तक तो हम पहुँच भी नहीं पाए हैं। यह तो एक ब्रह्माण्ड की बात है। ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। हम सब कुछ जानना

चाहते हैं, पर हमारी क्षमता इतनी नहीं है। हमें ऐसा लगता है कि सबकी आत्मा अलग-अलग है।

उपनिषदों में महाकाश, मठाकाश, घटाकश,
और जीवात्मा का सिद्धान्त दिया गया है।

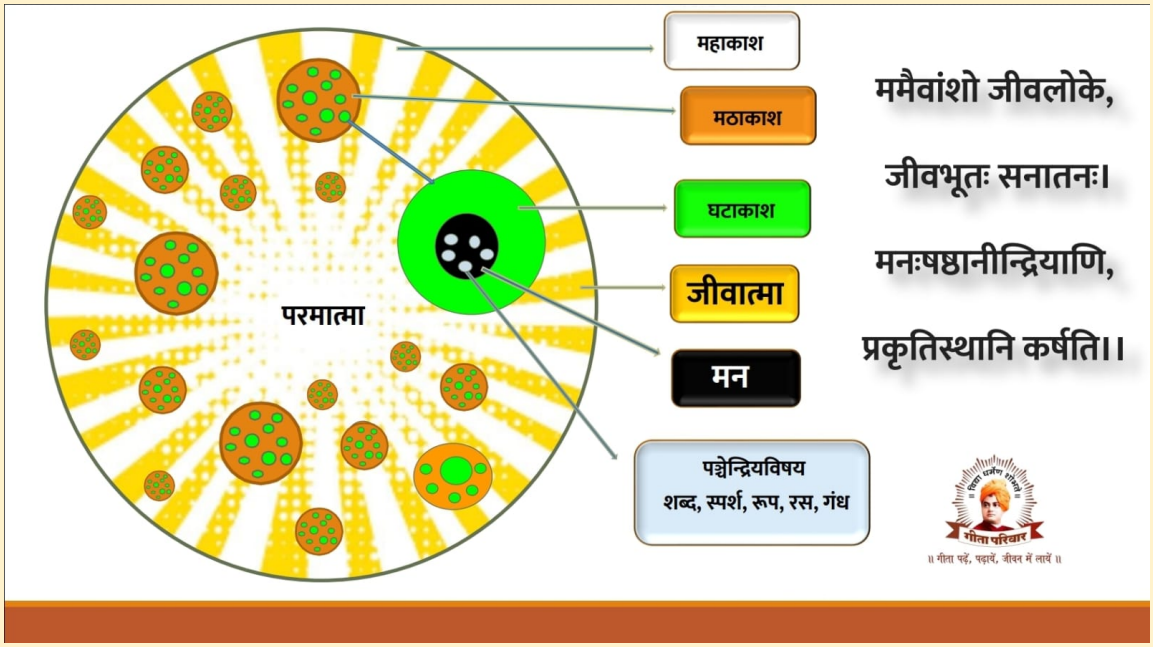

हम बाहर खड़े होकर आकाश को देखते हैं और घर के अन्दर भी आकाश वही होता है। केवल उसका तापमान अलग होता है। घर में घड़ा है, उस घड़े के अन्दर भी आकाश है। घर के अन्दर का आकाश, घर के बाहर का आकाश और घड़े के अन्दर का आकाश एक ही है या अलग अलग है? तापमान अलग-अलग दिखता है, लेकिन आकाश एक ही है।

मठाकाश को ब्रह्माणड समझ लीजिए,
घटाकाश को हमारा शरीर समझ लीजिए।

जब इस शरीर में जीवात्मा प्रवेश करती है, तो मन और पाँच इन्द्रियाँ होती है। इसी तरह परमात्मा, आत्मा तथा जीवात्मा अलग-अलग नहीं हैं। उनका स्वरूप अलग-अलग दिखता है।

इसे एक और उदाहरण से समझते हैं-

हम सब घर में बिजली का उपयोग करते हैं। विद्युत गृह से विद्युत शहर के अलग-अलग क्षेत्रों में वितरित होती है। वह विद्युत सोसाइटी के ट्रांसफार्मर में आई, उससे घर के विद्युत-मीटर में, उससे हमारे घर के प्रत्येक स्विच बोर्ड में लेकिन पड़ोसी की बिजली का बिल हमारे बिजली के बिल से अलग होता है। मूल में हम एक ही हैं।

हमारे शुभ-अशुभ पाप -पुण्य कर्मों के अनुसार हमें देह मिलती है। हम अलग-अलग शरीर धारण करके, अपने पाप-पुण्य को भोगते हैं। यह गहरी बात है, लेकिन हम गीता पढ़ने वालो लोगों को यह लाभ होता है कि हमें यह बात समझने को मिलती है। वायु से कोई चीज चिपकती नहीं है। अगर दुर्गन्ध या सुगन्ध वायु के निकट से जाएगी तो भी वह वायु से नहीं चिपकती है, वह वायु के साथ हमेशा के लिए नहीं होती है। जीवात्मा भी कर्मों में लिप्त नहीं होती है। मान लीजिये एक दीवार है। वह उत्तर की ओर झुक गई तो वह कभी भी गिरे, साल भर बाद या वर्षों बाद, वह उत्तर की ओर ही गिरेगी।

जिसने अपना पूरा जीवन अहङ्कार में बिताया है, अन्त समय में उसे अहङ्कार ही याद आएगा। जिसने अपना पूरा जीवन मान - प्रतिष्ठा में बिताया है, उसे मान-प्रतिष्ठा ही याद आएगी। जिसने अपना पूरा जीवन धन की लालसा में बिताया, उसे धन ही याद आएगा। जिस प्रवृत्ति में हम पूरा जीवन बिताते हैं, अन्त समय में वही प्रवृत्ति याद आती है।

15.9

श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं(वँ्), विषयानुपसेवते॥15.9॥

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन करता है।

विवेचन:- यहाँ श्रीभगवान पञ्चेन्द्रियों के विषय में बताते हैं।

श्रोत्र अर्थात् कर्ण या कान

यह सबसे शक्तिशाली इन्द्रिय है। दो वर्ष का बालक सुन-सुन कर पूरी भाषा सीख लेता है। मृत्यु के बाद भी छः घण्टे तक कान सुन सकते हैं- ऐसी मान्यता है इसलिए मरने के बाद भी श्रीमद्भगवद्गीता सुनाई जाती है। यह इन्द्रिय सबसे अधिक देर तक कार्य करती है।

चक्षु यानी नेत्र हमारे नेत्र

रूप का आकर्षण नेत्र के कारण होता है। स्ट्रीट-लाइट पर लाखों पतङ्गें जाकर टकराते रहते हैं। सबसे तेज भागने वाला चीता भी चालीस बार में एक बार हिरण को पकड़ पाता है क्योंकि हिरण की चौकड़ी बहुत तेज, चपल और फुर्तीली होती है। कस्तूरी की खोज करने वाले शिकारी हिरण को पकड़ लेते हैं। हिरण की एक कमजोरी है कि उसे सङ्गीत बहुत प्रिय है। श्रीकृष्ण की बाँसुरी बजाते हुए तस्वीर आपने देखी होगी। उसमें आसपास हिरण दिखाई देंगे। एक उपकरण के द्वारा सङ्गीत बजाया जाता है और उसकी धुन में वह इतना मग्न हो जाता है कि आँख बन्द करके सङ्गीत सुनता रहता है। शिकारी देखता है कि अब तो हिरण मन्त्र-मुग्ध हो गया है। तब शिकारी उसके अण्डकोष में से कस्तूरी प्राप्त करके हिरण को वहीं मरता हुआ छोड़ देता है। शब्द के आकर्षण में हिरण मृत्यु को प्राप्त होता है। स्ट्रीट-लाइट में कितने पतङ्गे टकरा-टकरा कर मर जाते हैं। कुछ पतङ्गे दीपक के आकर्षक में अपने प्राण गँवा देते हैं।

स्पर्श

हाथी सबसे शक्तिशाली प्राणी है। हाथी को पकड़ने वाले महावत हाथी को पकड़ लेते हैं। जिसका शिकार शेर भी नहीं कर सकता, साधारण मनुष्य उसे पकड़ लेते हैं। महावत हाथी के लिए जाल बिछाते हैं। अमावस्या के दिन आठ गुणा-आठ फीट का गड्ढा खोदते हैं, उस पर लकड़ी बिछाते हैं। हथिनी का ताजा गोबर उसमें डाला जाता है। हथिनी की रिकॉर्ड की गयी ध्वनि बजाई जाती है। हाथी ध्वनि और सुगन्ध की दिशा की ओर भागता है। अमावस्या की वजह से घोर अन्धकार होने के कारण गड्ढे में गिर जाता है। बहुत प्रयास करने के बाद भी वह उस गड्ढे से बाहर नहीं निकल पाता है। इधर-उधर टकराने के कारण से लहूलुहान हो जाता है और चिङ्घाड़ता है। दो-तीन दिन बाद महावत वहाँ जाकर उसे केले देता है। भूख-प्यास के कारण वह केले खाता है और महावत पर विश्वास कर लेता है। अगले दो-तीन दिन में महावत उसे अँगुली के इशारे और छड़ी, जिसे अङ्कुश कहते हैं, उसके अनुसार उठना-बैठना सिखा देता है। हाथी सीख जाता है। सात दिन बाद हाथी इतना सीख जाता है कि महावत उसकी सूँड पर चढ़कर सिर पर जाकर बैठ जाता है।

रस

मछुआरे एक लकड़ी में आटे की गोली लगाकर उसे पानी में डालते हैं। मछली आती है और आटे की गोली के कारण उसमें फँस जाती है। बाकी मछलियाँ भी देखती हैं। मछुआरा फिर काँटा डालता है और रस के आकर्षण के कारण मछलियाँ उसमें फँस जाती हैं।

गन्ध

भ्रमर गन्ध के आकर्षण में अपने प्राण गँवा देता है। भ्रमर को कमल के पुष्प की सुगन्ध बहुत प्रिय होती है। कमल के पुष्प की विशेषता होती है कि वह सूर्योदय के साथ खिलता है और सूर्य के अस्त होने पर बन्द हो जाता है। भ्रमर के दाँतों मे इतनी ताकत होती है कि वह लकड़ी में छेद कर सकता है, तो क्या फूल की पङ्खुड़ियों में से बाहर नहीं निकल सकता? किन्तु गन्ध का आर्कषण उसे बाहर नहीं निकलने देता। रात में हाथियों का झुण्ड कमल के फूलों को पैरों के नीचे कुचलता हुआ निकलता है और भ्रमर मारा जाता है।

कल्पना कीजिए उस मनुष्य की! जो इन पाँचो आकर्षणों में फँसा होता है, जिसके कारण मनुष्य बार-बार मरता है और बार-बार जन्म लेता है।
हम करोड़ों बार जन्म लेते हैं।

15.10

उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं

विवेचन:- इस जीवात्मा की तीन स्थितियाँ है।

एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना, इसे कहा गया है- **उत्क्रामन्तं**।

शरीर में पहुँच गया तो उसे कहा गया **स्थितम्।**

उस शरीर के द्वारा भोगों में रम गया, उसे कहा गया **भुञ्जान्।**

यह स्थितियाँ इन तीन गुणों के कारण होती हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सभी एक ही प्रकार से स्थिति नहीं भोगते। एक ही रस को सब एक ही प्रकार से नहीं भोगते। सत्त्व, रज और तम के गुणों के अनुसार उनकी प्रवृत्ति बनती है। बिना ज्ञानचक्षु के यह बात समझना कठिन है। कुछ लोग नित्य पूजा करते हैं, जो स्वाभाविक रूप से मिल गया, वही करते हैं। समझ कर नहीं करते, ज्ञानचक्षु से नहीं करते। पञ्च प्राणेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, सूक्ष्म शरीर, साधना, भगवत्कृपा, गुरुकृपा के करण ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है।

गोस्वामी जी ने कहा है -

जे ही जाने तुम्हीं जानत होई, जानत तुम्हें तुम ही हो जाई।

आपको वे ही जान सकते हैं जिन्हें आप जानने देते हो। जब तक आप नहीं चाहते, आपको कोई जान नहीं सकता। जो आपको जानते हैं, वे आपके जैसे हो जाते हैं। अज्ञानी जिस स्तर पर है, वह उस स्तर का अज्ञानी है। सत्ताईस सौ वर्ष पूर्व सुकरात ने कहा था-

"मैं जितना जानता गया,
मुझे उतना पता चला कि
मैं और कितना नहीं जानता।"

एक कहावत भी है-

"थोथा चना बाजे घना"

जिसे थोड़ा आता है, उसे लगता है कि मुझे बहुत आता है। ज्ञानी को अभिमान नहीं होता। गोस्वामी जी की चौपाई है-

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।

और

बिनु गुर होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।

जब तक गुरु और वैराग्य न हो तब तक जीवन में ज्ञान नहीं होता।

15.11

यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

विवेचन :- श्रीभगवान यहाँ पर बड़ी विशेष बात कहते हैं। मार्ग पर चलना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि गन्तव्य तक पहुँचना महत्त्वपूर्ण है। हमने देखा है कि लोग दो-दो, तीन-तीन घण्टे की साधना करते हैं, योग करते हैं, ध्यान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, फिर भी उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं होता, न ही उनकी भाषा में या व्यवहार में कोई परिवर्तन होता है। छोटे से लाभ के लिए झूठ बोल देते हैं। दो फीट जमीन के लिए भाई से ईर्ष्या करते हैं।

पूजा का यत्न तो किया किन्तु अन्त:करण को शुद्ध करने का कोई यत्न नहीं किया। अन्तःकरण को स्वच्छ नहीं किया, तब तक जीवन में पूजा की उपलब्धता सार्थक नहीं होगी। अन्तःकरण से झूठ, कपट, वासना, पाप, द्वेष को मिटाना है। इस हृदय में न दया, न करुणा, न मैत्री, न प्रेम, न उदारता, न त्याग तो क्या लाभ? श्रीभगवान अन्तःकरण की शुद्धता को अधिक महत्त्व देते हैं। अपनी कमजोरियों को पहचान कर उसे ठीक करना चाहिये।

"वह ऐसा करता है इसलिए मैं क्रोधित होता हूँ।"
आपका क्रोधित होना आपकी चाहत है, क्योंकि वह आपके अनुसार नहीं कर रहा इसलिए आप क्रोधित हो रहे हैं।

15.12

यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

विवेचन:- श्रीभगवान अन्तरिक्ष से शुरू करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! सूर्य में, चन्द्रमा में और अग्नि में जो तेज है, वह मेरा ही तेज है। मैं ही सभी वनस्पतियों का पोषण करता हूँ।

15.13

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

विवेचनः- अब श्रीभगवान अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आ गए। श्रीभगवान कहते हैं कि मै वहीं हूँ, ऐसी बात नहीं है। मैं ही सब वनस्पतियों का पोषण करता हूँ।

15.14

अहं(वँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं- "मैं तुम्हारे भीतर भी हूँ। मैं ही प्राणियों के भीतर रहने वाला प्राण, मैं ही पञ्चप्राण और पञ्च उपप्राण बनता हूँ। प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान। इन दस प्राणों से शरीर की सारी क्रियाएँ चलती हैं। आप बैठकर भोजन खाएँ, खड़े होकर खाएँ, उल्टा होकर खाएँ, भोजन पेट में ही जाएगा सिर में नहीं। कैसे भी बैठें, लेटें, धमनियों में रक्त प्रवाह प्राण ही करता है।

चार प्रकार की अग्नि में-

बड़वाग्नि, जो समुद्र में आती है ज्वार के समय।
एक दावाग्नि, जो जङ्गल में होती है।
एक जठराग्नि, जो पेट में होती है।
और वैश्वानर अग्नि,

यदि हम सुबह से शाम तक आइसक्रीम ही खाएँ, परन्तु सुबह जो मल त्याग करेंगे, वह गर्म में होगा इसलिए कहा जाता है कि सूर्यास्त से पहले भोजन करें। सूर्यास्त के बाद अग्नि मद्धम हो जाती है।

श्रीभगवान कहते हैं कि वैश्ववानर अग्नि के रूप में चार प्रकार के भोजन को मैं ही पचाता हूँ।

चार प्रकार के भोजन-
चबाकर, चाट कर ,पीकर, चूस कर खाने वाले।

15.15

सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है। सूर्य की शक्ति से वनस्पतियाँ पकती हैं। रात्रि में चन्द्रमा उसे शीतलता प्रदान करता है। इस प्रकार पुष्ट होकर वे वनस्पतियाँ, अन्न, फल तथा शाक के रूप में हमारे शरीर में प्रवेश करती हैं। गुरुत्वाकर्षण के नियमों के विपरीत वे सारे प्राण उन समस्त वनस्पतियों को हमारी जठराग्नि तक ले जाते हैं। वहाँ वे पकती हैं जिससे रस बनता है, जिसे वायु हमारे शरीर के एक-एक रोम

तक पहुँचाती है। इस प्रकार वह महाकाश, मठाकाश में होते हुये इस घटाकाश में निवास करता है। श्रीभगवान कहते हैं कि मैं ही तुम्हारी स्मृति हूँ, मैं ही तुम्हारा ज्ञान हूँ तथा मैं ही तुम्हारा अपोहन हूँ। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ।

स्मृति का अर्थ है- हम जो भी पुराना जानते हैं।

ज्ञान- हम जो नया सीखते तथा जानते हैं वह ज्ञान है।

अपोहन- पोहन का अर्थ होता है- संशय, जैसे यह ठीक है या वह ठीक है? ऐसा करना उचित है या वैसा करना? इन समस्त संशयों का निवारण ही अपोहन है।

15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

विवेचनः- अगले तीन श्लोकों में श्रीभगवान अपने पुरुषोत्तम स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं, जिसके कारण यह अध्याय शास्त्र बन गया है। ये तीन श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! इस संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं- क्षर अर्थात् नाशवान और अक्षर अर्थात् अविनाशी। इसके लिये हम अनेक शब्द प्रयोग करते हैं, जैसे क्षर-अक्षर, नाशवान-अविनाशी, जड़-चेतन, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, देह-देही, प्रकृति-पुरुष आादि। ये सब एक ही बात हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि समस्त प्राणियों का शरीर नाशवान है तथा जीवात्मा अविनाशी है। यह शरीर जन्मता है, बढ़ता है और मरता है। इसके भीतर रहने वाला चेतन तत्त्व न कभी जन्मा, न कभी बढ़ा, न कभी बूढ़ा हुआ और न ही कभी मरेगा। यह अपरिवर्तित रहता है। वह एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रयाण करता रहता है। यह शरीर क्षर है तथा इसकी चेतन सत्ता अक्षर है।

जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो शरीर वैसे का वैसा रहता है, किन्तु जैसे ही वह चेतन तत्त्व उसमें से निकल गया तो कहते हैं कि अब यह मिट्टी हो गया, इसे जला कर आओ। कल तक जिस शरीर का इतना ध्यान रखते थे, उसे अच्छे से अच्छे वस्त्रों, आभूषणों तथा सौन्दर्य प्रसाधनों से सजाते थे, किन्तु चेतन तत्त्व निकलते ही उसी शरीर की जितनी शीघ्र हो, अन्त्येष्टि करने का प्रयास करते हैं। कितना भी प्रिय व्यक्ति हो, मृत्यु के पश्चात उसे एक दिन भी घर में नहीं रखते।

आगे श्रीभगवान एक नए रहस्य का उदघाटन करते हैं।

15.17

उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन! इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर, सबका भरण-

पोषण करता है। वह अविनाशी, ईश्वर, परमात्मा के नाम से जाना जाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि यह बात ठीक है कि तुम मेरे अंश हो, लेकिन क्या तुम मुझे बना सकते हो? अर्थात् ईश्वर ने हमें बनाया किन्तु हम ईश्वर को नहीं बना सकते। हम उनके ही अंश हैं, हमारी शक्तियाँ वैसी ही हैं, फिर भी हमारी शक्तियाँ सीमित हैं इसलिए श्रीभगवान कहते हैं कि मैं इनसे उत्तम हूँ और उत्तम होने के कारण ही मुझे परम ईश्वर अर्थात् परमेश्वर या परम आत्मा या परमात्मा कहा जाता है।

अट्ठारहवें श्लोक में श्रीभगवान अपना नामकरण करते हैं।

15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! मैं नाशवान, जड़वर्ग-क्षेत्र से सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिए इस लोक में और वेदों में, मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

श्रीभगवान पुरुष के निकट हैं तथा प्रकृति से दूर हैं। यहाँ श्रीभगवान अपने स्वरूप का उदघाटन करते हैं और अपनी गोपनीय बात अर्जुन को बताते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि जीवात्मा माया के वश में आती है, किन्तु मैं माया के वश में नहीं आता। जीवात्मा प्रकृति की माया में फँसती है, मैं इनमें नहीं फँसता हूँ।

वे पुरुषोत्तम हमारे कोई भी इष्ट हो सकते हैं। वे श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव या श्रीदुर्गा कोई भी हो सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहीं भी श्रीकृष्णोवाच नहीं आता। श्रीवेदव्यासजी ने पूरी महाभारत में अनेक स्थानों पर श्रीवासुदेवोवाच, श्रीकृष्णोवाच, श्रीकेशवोवाच आदि शब्दों का प्रयोग किया है, केवल मध्य के पच्चीसवें अध्याय से बयालीसवें अध्याय तक इन अट्ठारह अध्यायों में श्रीभगवानुवाच का प्रयोग किया। इसका कारण है कि यहाँ श्रीकृष्ण जब बोलते हैं तो वह श्रीकृष्णस्वरूप में नहीं बोलते, बल्कि साक्षात परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वरूप में बोलते हैं इसलिए जिसके जो इष्ट हैं, उसके लिये वह उन इष्ट का ही उवाच है।

अगले दो श्लोकों में श्रीभगवान ने अपने पुरुषोत्तम स्वरूप की महिमा का वर्णन किया है।

15.19

यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझे इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जान लेता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ परमेश्वर का ही भजन करता है। जिसके जो इष्ट हैं, वह उन्हीं का भजन करता है।

15.20

इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

विवेचन- श्रीभगवान को अर्जुन के दो नाम अत्यन्त प्रिय हैं-एक अनघ और दूसरा अनुसूय।

अनघ अर्थात् जिसने कभी पाप नहीं किया।

अनुसूय वह है जो किसी दूसरे की निन्दा नहीं करता,
दोष नहीं निकालता।

श्रीभगवान कहते हैं, हे अनघ, हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार इस अति रहस्ययुक्त, महत्त्वपूर्ण और गुह्यतम शास्त्र का ज्ञान मैंने तुम्हें प्रदान किया है।

गुह्य की तीन श्रेणियाँ होती हैं-
गुह्य, गुह्यतर तथा गुह्यतम।
गोपनीय, अधिक गोपनीय तथा सर्वाधिक गोपनीय।

श्रीभगवान इसे सर्वाधिक गोपनीय कहते हैं तथा कहते हैं, 'हे भरतवंशी अर्जुन! इसको जानकर मनुष्य ज्ञानवान् तथा कृतकृत्य हो जाता है।

गोस्वामीजी कहते हैं-

चतुर सिरोमनि सोइ जग माहीं |
जो यह मणि हित जतन कराहीं ||
राम भगति चिन्तामणि सुन्दर |
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥

अर्थत् जिसे समझ में आ गया, वही चतुर है। चतुर शिरोमणि वह नहीं है जो बहुत धन अर्जित करता है। चतुर शिरोमणि वह है जो रामनाम की भक्ति की चिन्तामणि को अपने हृदय में सँजो कर रखता है।

श्रीभगवान ने स्वयं इस अध्याय को शास्त्र की सङ्ज्ञा दी है और पुरुषोत्तमयोग कह कर बताया कि उस एक पुरुषोत्तम को जानना ही इस जीवन का लक्ष्य है। यह दृष्टिकोण जिसे मिल गया, उसका जीवन कृतकृत्य हो गया।

"एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति ।"

इसी के साथ हरिनाम सङ्कीर्तन के पश्चात आज के सारगर्भित विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तरः-

प्रश्नकर्ता- एन. आर. रमन भैया

प्रश्न- मनुष्य यदि केवल अन्तकाल में ईश्वर का ध्यान करता है तो क्या उसका कल्याण होता है?

उत्तर- अर्जुन ने प्रश्न किया कि यह बात सही है कि मैंने पूरा जीवन शास्त्रोक्त जिया है, कभी कोई पाप नहीं किया है, किन्तु आप जिस प्रकार की भक्ति कह रहे हैं, उसमें मैं ठहर पाऊँगा कि नहीं? कहीं मेरी स्थिति छिन्न-भिन्न बादलों जैसी तो नहीं हो जाएगी? तब श्रीभगवान ने कहा कि जो एक बार मेरे मार्ग पर लग गया, इस जन्म में कल्याण नहीं होगा तो कोई बात नहीं, लेकिन यदि इस जीवन में श्रीभगवान का चिन्तन करने का भाव मन में आ गया तो अगले जन्म में-

"**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते** ।।"

अर्थात् वह शुचिमान्, पवित्र आत्माओं के बीच में श्रीमान् पुरुष होकर जन्म लेता है और जहाँ तक की यात्रा इस जन्म में हो गयी, वहाँ से आगे की यात्रा आरम्भ करता है, इसलिए जीवन के किसी भी अवसर पर यदि मैं सन्मार्ग पर लग गया, तो आगे की यात्रा के लिये हमें ईश्वर की कृपा से मार्ग मिलता जाता है। आपने देखा होगा कि छोटे-छोटे, तीन-चार वर्ष के बालक श्रीमद्भगवद्गीता को कण्ठस्थ कर लेते हैं। वे पूर्वजन्मों के गीताव्रती हैं। वे केवल अभ्यास करते हैं और बोलने लगते हैं। उन्हें बाल्यकाल में ही इस प्रकार के गुरु मिल जाते हैं और उन्हें सात्त्विकता प्राप्त हो जाती है।

प्रश्नकर्ता- रेणु धवन दीदी

प्रश्न- हम उपासना तो करते हैं, किन्तु अन्तःकारण शुद्ध नहीं है तो फल नहीं मिलता, तो हम अन्तःकरण को शुद्ध कैसे करें?

उत्तर- ऐसा नहीं है कि फल नहीं मिलता। उसका फल भी मिलता है, पुण्य भी मिलता है और उस कारण हमारे अगले जन्म की वृत्तियाँ अच्छी होंगी, किन्तु इस जीवन में तत्त्वज्ञान नहीं होगा। इस जीवन में ईश्वर नहीं मिलेंगे। अन्तःकरण की शुद्धता के लिये श्रीभगवान ने भक्त के जो उन्तालीस लक्षण बताये हैं, उन्हीं को जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता- कन्दर्प अनुराधा दीदी

प्रश्न- हमारे आस-पास अनेक ऐसे व्यक्ति होते हैं जो नकारात्मक मानसिकता के होते हैं, किन्तु हम उन्हें छोड़ भी नहीं सकते। ऐसे में व्यक्ति सात्त्विक रहने का प्रयास कैसे करें?

उत्तर- यदि आपकी सात्त्विकता दूसरे व्यक्ति के कारण नष्ट हो रही है तो वह सात्त्विकता नहीं है बल्कि राजसिकता है। वास्तव में हम स्वयं को तो सात्त्विक मानते हैं और दूसरों को नकारात्मक मानते हैं। जैसे हमें दूसरों की कोई बात प्रिय नहीं होती, वैसे ही उन्हें भी हमारी अनेक बातें अप्रिय हो सकती हैं इसलिए हमें किसी को छोड़ना नहीं है, बल्कि सहज रह कर उन बातों का प्रभाव अपने ऊपर नहीं होने देना है।

प्रश्नकर्ता- शेफाली दीदी

प्रश्न- इस ग्रन्थ का नाम श्रीमद्भगवद्गीता कैसे पड़ा?

उत्तर- श्री से युक्त यह श्रीभगवान द्वारा स्वयं गाया गया, इसलिये इसका नाम श्रीमद्भगवद्गीता पड़ा। गीता का अर्थ है गाकर कहा गया। केवल यही एक गीताजी नहीं हैं, बल्कि अलग-अलग ग्रन्थों में अट्ठारह प्रकार की प्रमुख गीताएँ हैं। जैसे अष्टावक्र गीता, श्रीराम गीता आदि।

इसका महत्त्व इसलिये अधिक है क्योंकि इसे श्रीभगवान ने रण के मैदान में मोक्ष का उपदेश देने के लिये कहा है। यह विलक्षण है। यह एकमात्र ग्रन्थ है, जिसकी जयन्ती मनायी जाती है। यह अलग ग्रन्थ नहीं है, बल्कि महाभारत का सात सौ श्लोकों का एक छोटा सा भाग है।

प्रश्नकर्ता- हेमन्त भैया

प्रश्न- हम बोलते हैं कि जीवात्मा सनातन है, दूसरी तरफ हम कहते हैं कि यह चौदह लोकों में विचरण करती है, अलग-अलग योनियों में जन्म लेती है तो सृष्टि बनने के पहले या उसके बाद यह जीवात्मा कहाँ होती है?

उत्तर- यह प्रश्न हमारे मस्तिष्क में इसलिये आता है क्योंकि हम जन्म लेते हैं और हमारी मृत्यु हो जाती है। श्रीभगवान ने हमें अनन्त को समझने की शक्ति नहीं दी है। श्रीभगवान ने कहा है-

नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा

अर्थात् जिसका न आदि है और न अन्त है, लेकिन यह बात हमारे मस्तिष्क में बैठती ही नहीं। सृष्टि अनन्त है। जो हम आज देखते हैं, वह करोड़ों वर्ष पूर्व हो चुका होता है और जो आज हो रहा है, अरबों वर्ष बाद दिखेगा। यह अनन्त है।

प्रश्नकर्ता- हेमन्त भैया

प्रश्न- अक्सर हम कहते हैं कि यह पिछले जन्म के कर्मों का फल है। हमें कैसे पता चलेगा कि यह पिछले जन्म का फल है या इस जन्म का?

उत्तर- श्रीभगवान कहते हैं कि कर्म की गति अति गहन है। इसे सामान्य बुद्धि से समझना असम्भव है। तीन प्रकार के फल होते हैं- एक त्वरित फल, जैसे मुझे किसी ने थप्पड़ मारा, मैंने उसे पलट कर थप्पड़ मार दिया। दूसरा है सञ्चित फल, जैसे मुझे किसी ने थप्पड़ मारा तो मैं सोचूँगा कि मौका देखकर बाद में मारूँगा और एक होता है कि पूरा जीवन बीत गया, मैं प्रतीक्षा करता रह गया तो वह फल शेष रह गया। अब यह हमारा प्रारब्ध बन गया। अगले जन्म में निपटेगा। यह कर्मफल का सिद्धान्त है। इसे कोई नहीं जान सकता। नैसर्गिक रूप से जो स्थिति आती है उसी के अनुसार यह तय होता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||